|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 17: श्रद्धात्रयविभागयोग

3/3 (श्लोक 20-28), शनिवार, 02 दिसंबर 2023

विवेचक: गीता विशारद डॉ आशू जी गोयल

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/zlT1-rwyq28

जीवन में श्रद्धा का महत्त्व

श्रीकृष्ण वन्दना, गुरु वन्दना व दीप प्रज्वलन के साथ आज के सत्र का आरम्भ हुआ। भगवान की कृपा हम पर बरस रही है इसलिये गीता जी के महायज्ञ में हम लोग सम्मिलित हुए हैं। गीता जी को कण्ठस्थ कर रहे हैं, गीता जी को जीवन में लाने का प्रयास कर रहे हैं। पता नहीं इस जन्म के या पिछले जन्म के कुछ पुण्य हमारे साथ हैं या किसी सन्त महात्मा की कृपा हम पर बरस रही है कि हम गीता जी को जानने का प्रयास कर रहे हैं।

पिछले भाग में अर्जुन का प्रश्न है कि, बिना शास्त्रों के ज्ञान के जो श्रद्धा हो; वह सात्त्विक, राजसी या तामसी में से कौन सी है? श्रीभगवान ने उसके बाद ज्ञान का पिटारा खोल दिया। श्रीभगवान ने कहा कि श्रद्धा तीन प्रकार की है-यह सात्त्विक, राजसी या तामसी हो सकती है।

श्रद्धा क्या है? जैसे रङ्गो को समझना हो, पर हम केवल रङ्ग नहीं देख सकते हैं। बिना किसी वस्तु से एकाकार करे हमें कोई रङ्ग नहीं दिखाई देता। हमें रङ्ग देखने के लिए किसी न किसी माध्यम का आश्रय लेना पड़ता है । जैसे बिना एकाकार हुए किसी रङ्ग को नहीं देखा जा सकता, वैसे ही श्रद्धा भी विशिष्ट है। बिना कर्म के साथ जोड़े उसे देखा नहीं जा सकता।

किसी की श्रद्धा पूजा करने में होती है, किसी की यज्ञ में, किसी की दान करने में, तो किसी की ध्यान करने में, किसी की महापुरुषों मे तथा किसी की पुस्तक पढ़ने में होती है। जैसी जिसकी श्रद्धा हो वैसा ही उसका चरित्र होता है। इस '**श्रद्धात्रयविभागयोग**' में इसी के बारे में बताया गया है। श्रद्धा से भरपूर अत्यन्त ही पवित्र '**श्रद्धात्रयविभागयोग**' नामक अध्याय के विवेचन का प्रारम्भ हुआ। जिसकी जैसी श्रद्धा होगी उसको वैसी ही मूरत दिखेगी।

17.20

दातव्यमिति यद्दानं(न्), दीयतेऽनुपकारिणे|
देशे काले च पात्रे च, तद्दानं(म्) सात्त्विकं(म्) स्मृतम्||17.20||

दान देना कर्तव्य है - ऐसे भाव से जो दान देश, काल और पात्र के प्राप्त होने पर अनुपकारी को अर्थात् निष्काम भाव से दिया जाता है, वह दान सात्त्विक कहा गया है।

विवेचन- भगवान ने कहा- हे अर्जुन! यज्ञ, दान और तप तीन प्रकार के होते हैं। सात्त्विक, राजसी और तामसिक।

दान भी तीन प्रकार के होते हैं। सात्त्विक, राजसी और तामसिक-

जो दान देश, काल एवं पात्र को ध्यान में रख कर दिया जाए, वही दान सात्त्विक होता है। देश, काल और पात्र का विचार करके ही दान दिया जाना चाहिए। मैंने दान दिया, कोई मेरा उपकार मान ले या मुझे मान-सम्मान मिले, इस प्रवृत्ति से दान नहीं करना चाहिए। भगवान ने मुझे दिया है, उसी को समर्पण कर रहा हूँ।

जैसे भागवत् कथा होती हैं तो कुछ कार्यकर्ताओं को प्रसाद वितरण का कार्य सौंपा जाता हैं। वह प्रसाद वितरण कर किसी पर उपकार नहीं कर रहे हैं, उसे अपना कर्त्तव्य समझकर उसका पालन कर रहे हैं। इससे उसकी अपेक्षा नहीं है। उसी प्रकार भगवान ने हमें जो बल, बुद्धि और धन दिया है, कर्त्तव्य समझ कर इससे दूसरो की सेवा करूँ। भगवान ने दान देना मनुष्य का कर्त्तव्य बताया है। इसे त्याग समझने का आदेश नहीं दिया है। वृहस्पति नीति में अपनी आय का दस प्रतिशत दान और शुक्र नीति में अपनी आय का बीस प्रतिशत दान का विधान हैं। सिर्फ दान ही महत्त्वपूर्ण नहीं है।

एक प्रसङ्ग है- एक राज्य में अकाल पड़ गया। राजा और राज्य के प्रमुख पुरोहित बहुत ही सात्त्विक और कर्तव्य निष्ठ थे। उन्होंने अकाल के आरम्भ में ही राजा को यज्ञ का सुझाव दिया। राजा ने बहुत ही निष्ठा तथा कर्त्तव्य भाव से यज्ञ का आयोजन करवाया। वहाँ की प्रजा भी श्रद्धावान थी। सभी ने कर्त्तव्य भाव से बढ़-चढ़ कर भाग लिया और यज्ञ को भली-भाँति सम्पन्न करवाया। इन्द्रदेव ने खुश होकर वर्षा की और अकाल खत्म हो गया। यज्ञ ख़त्म होने के बाद सभी अपने-अपने घर को जा रहे थे। रास्ते में आसपास धूप थी, लेकिन उस समूह के ऊपर बादल अपनी कृपा दृष्टि बनाये हुए थे। उस समूह में साधु, सेठ, आम जन मानस और एक बहुत ही गरीब बुढ़िया थी। सभी ने अपने तरीके से जानने का कोशिश की, कि हम लोगों में से कौन पुण्य आत्मा है। यह जानने के लिए सभी एक-एक कर अलग होते गए। अन्त में साधु और बुढ़िया बच गया। साधु बोले आप ही पुण्यात्मा हो, आप के कारण ही ऐसा सम्भव हुआ। बुढ़िया बोली मैं कैसे हो सकती हूँ? और भागने लगी। बादल भी उनके पीछे-पीछे चलने लगे। महात्माजी नतमस्तक हो गये। पूछा, माता ऐसा कौन सा कार्य किया। बुढ़िया ने कहा- मैं बहुत ही गरीब हूँ। यज्ञ में दान के लिए कुछ नहीं था। बहुत ढूँढ़ने पर एक सिक्का मिला, उसे यज्ञ में अर्पित किया और प्रसाद स्वरूप जो मुझे मिलता था उसमे से एक पूरी मैं खा लेती थी और बाकी भूखे कुत्ते को खिला देती थी। बुढ़िया ने सिक्के के रूप में अपना सर्वस्व अर्पित किया। प्रसाद स्वरूप जो मिला उसे भी देने में विश्वास किया। भगवान कहते हैं, यही सात्त्विक दान है।

17.21

यत्तु प्रत्युपकारार्थं(म्), फलमुद्दिश्य वा पुनः|
दीयते च परिक्लिष्टं(न्), तद्दानं(म्) राजसं(म्) स्मृतम्||17.21||

किन्तु जो (दान) क्लेशपूर्वक और प्रत्युपकार के लिये अथवा फल-प्राप्ति का उद्देश्य बनाकर फिर दिया जाता है, वह दान राजस कहा जाता है।

विवेचन: जो दान फल प्राप्ति की इच्छा से एवं क्लेश या प्रत्युपकार के तौर पर किया जाता है वह दान राज़सिक दान कहलाता है। जैसे कि घर में कोई आया कि नवरात्रि या गणेश जी के लिए चन्दा दे दो, तो हम उसे कहते हैं- पचास रुपए ले लो, सौ रुपए ले लो, दो सौ रुपए ले लो।

इस तरह भाव एवं मोलभाव करके दान देते हैं और दान देने के बाद भी हमारा मन दु:खी हो जाता है। उससे पुण्य नहीं मिलता बल्कि उससे और ज्यादा क्लेश हो जाता है। फोटो खिंचवाने के लिए या मान-सम्मान के लिए किया गया दान उचित तो नहीं है किन्तु भूखे के लिए तो वह रोटी की व्यवस्था कर रहा है, अतः इसे मध्यम श्रेणी का दान कहा गया है, इसलिए राजसिक दान को बुरा नहीं कहा जा सकता। किसी न किसी रूप में आप अच्छा कार्य तो कर ही रहे हो।

हमारे गीता सेवी बहुत ही श्रद्धा से समय का दान कर रहे हैं और अपनी प्रसन्नता सभी में बाँट रहें हैं।

17.22

अदेशकाले यद्दानम्, अपात्रेभ्यश्च दीयते|
असत्कृतमवज्ञातं(न्), तत्तामसमुदाहृतम्||17.22||

जो दान बिना सत्कार के तथा अवज्ञापूर्वक अयोग्य देश और काल में कुपात्र को दिया जाता है, वह (दान) तामस कहा गया है।

विवेचन: जो दान अपात्र को दिया जाता है एवं तिरस्कार की भावना से दिया जाता है, वह दान तामसिक कहलाता है। जैसे कि हमारे घर में काम करने वाली बाई को एक साड़ी दी और चार दिन बाद उसने छुट्टी माँगी तो हमने उसे कह दिया कि, अरे हमने तो तुम्हें साड़ी दी थी और तुम फिर भी छुट्टी माँग रही हो, इस तरह अपेक्षा से किया गया दान तामसिक होता है।

कहीं न कहीं हमने बाई को नीचा दिखा दिया। इससे अच्छा तो हम दान ही न करते। अतः प्रत्युपकार की भावना नहीं होना चाहिए एवं कुपात्र जैसे बीड़ी, सिगरेट, शराब पीने वाले को, व्यसन हेतु दान करने से बचना चाहिए क्योंकि वह उसका उपयोग ग़लत रास्ते पर जाने के लिए करेगा, अतः हमेशा दान सुपात्र को ही देना चाहिए।

एक प्रसङ्ग है- भगवान बुद्ध भिक्षा के लिए पास के गाँव में जाते थे, उनके चचेरे भाई आनन्द भी उनके साथ थे। एक बुढ़िया अत्यन्त ही कठोर और निष्ठुर सवभाव की थी। जब भी बुढ़िया के पास भिक्षा के लिए जाते तो बुरा-भला सुनाती, लेकिन भगवान बुद्ध हर दिन उसके पास जाते। आनन्द ने पूछा, वह भिक्षा भी नहीं देती और गाली देती है फिर भी आप हर दिन जाते हैं। उन्होंने जबाव दिया; जब बुढ़िया अपने स्वभाव का त्याग नहीं कर सकती, तो मैं अपने स्वभाव को कैसे छोड़ दूँ।

गाँधीजी हर दिन प्रार्थना के लिए प्रार्थना सभा में जाते थे। प्रार्थना सभा में भजन से प्रभावित हो कर सामने बैठे एक मजदूर की आँखों से आँसू बहने लगे। इसकी चर्चा करते हैं तो जबाब मिलता है, वह तो बाहर बीड़ी फूँकता रहता हैं। हम पिछले कार्य से तुलना करके किसी के बारे में फिर निष्कर्ष निकालते हैं। वर्तमान में जो घटित हो रहा है उसकी अवहेलना करते हैं।

भूखे और रोगी को दान देने से पहले कोई पात्रता नहीं देखनी चाहिए। कोई भूखा अपात्र है, फिर भी पहले उसे भोजन देना हमारा परम कर्त्तव्य है। किसी रोगी को इलाज के लिए औषधि देना भी हमारा कर्त्तव्य बनता है।

धर्म के चार चरण सत्य, दया, तप और दान बताए गए हैं:

प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान।
जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान॥

महापुरुषों के द्वारा दान के लिए बहुत सुन्दर व्याख्या की गई है:-

मरूँ पर माँगू नहीं, अपने तन के काज।
परमारथ के कारज में, मोहे न आवे लाज।।

अपने लिए माँगने पर हमें लज्जा आनी चाहिए, लेकिन किसी के उपकार के लिए माँगने पर हमें किसी तरह की कोई लज्जा नहीं होनी चाहिए।

चिड़ी चोंच भर ले गई, नदी न घटियो नीर।
दान दिए धन न घटे, कह गए दास कबीर।।

जब हम दान देते हैं तो कभी भी हमारे धन के भण्डार में किसी तरह की कमी परमपिता परमात्मा आने ही नहीं देते हैं।

कद ऊँचा तो कर लिया, ऊँचे रखो विचार।
दान धर्म जो न किया, जीवन है बेकार।।

अर्थात जीवन में दान का बहुत महत्त्व है। बिना दान के जीवन व्यर्थ होता है।

17.23

ॐ तत्सदिति निर्देशो, ब्रह्मणस्त्रिविधः(स्) स्मृतः|
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च, यज्ञाश्च विहिताः(फ्) पुरा||17.23||

ऊँ, तत् और सत् - इन तीन प्रकार के नामों से (जिस) परमात्मा का निर्देश (संकेत) किया गया है, उसी परमात्मा से सृष्टि के आदि में वेदों तथा ब्राह्मणों और यज्ञों की रचना हुई है।

विवेचन :ॐ, तत्, सत्, इति कहा गया। वही सबसे महत्त्वपूर्ण है। भगवान जी कहते हैं कि, हे अर्जुन! सृष्टि काल से ही ब्राह्मण, वेद इत्यादि रचे गए।

ओम् की महत्ता: ओम् तीन अक्षरों से बना है। अ+ऊ+म+ ्। यहाँ अ को स्थूल स्वरूप, ऊ को सूक्ष्म स्वरूप, म को कारण और हलन्त को निराकार स्वरूप माना गया है, इसलिए सभी संस्कृतियों तथा वाङ्मय में ओम् को मान्यता दी गई है। ओम्, तत्, सत्। यह तीन प्रकार का सच्चिदानन्द घन ब्रह्म का नाम कहा गया है, उसी से सृष्टि के आदिकाल में ब्राह्मण और वेद तथा यज्ञ आदि रचे गए हैं। किसी भी अनुष्ठान का समापन, ओम्- तत्- सत् से किया जाता है, जो यह भाव दर्शाता है कि यदि हमसे कुछ भूल हो गई हो तो परमात्मा इसे पूर्ण मान लेवे।

ॐ क्या है? ॐ की दृष्टि क्या है? जल, गन्धर्व एवं पृथ्वी को ब्रह्म नहीं कहा गया, किन्तु शब्द को ब्रह्म कहा गया है। इन सभी तत्त्वों में सबसे पहले निर्माण हुआ आकाश और आकाश से भी पहले जो निर्माण हुआ वह है शब्द।

बाइबिल में भी कहा गया है कि,

"In the beginning of the world there was only the word and lord, then word converted into the world and lord in God."

Lord मे से एल को निकाल कर **word** के बीच में छुपाया तो **world** बन गया।

आकाश निराकार परमात्मा के नजदीक है। इसको छू नहीं सकते, देख नहीं सकते। आजकल के वैज्ञानिक विज्ञान थ्योरी के द्वारा कहते हैं कि यूनिवर्स को देखा जा सकता है, किन्तु यह वहाँ से बहुत आगे है। यह एक अनन्त यात्रा है।

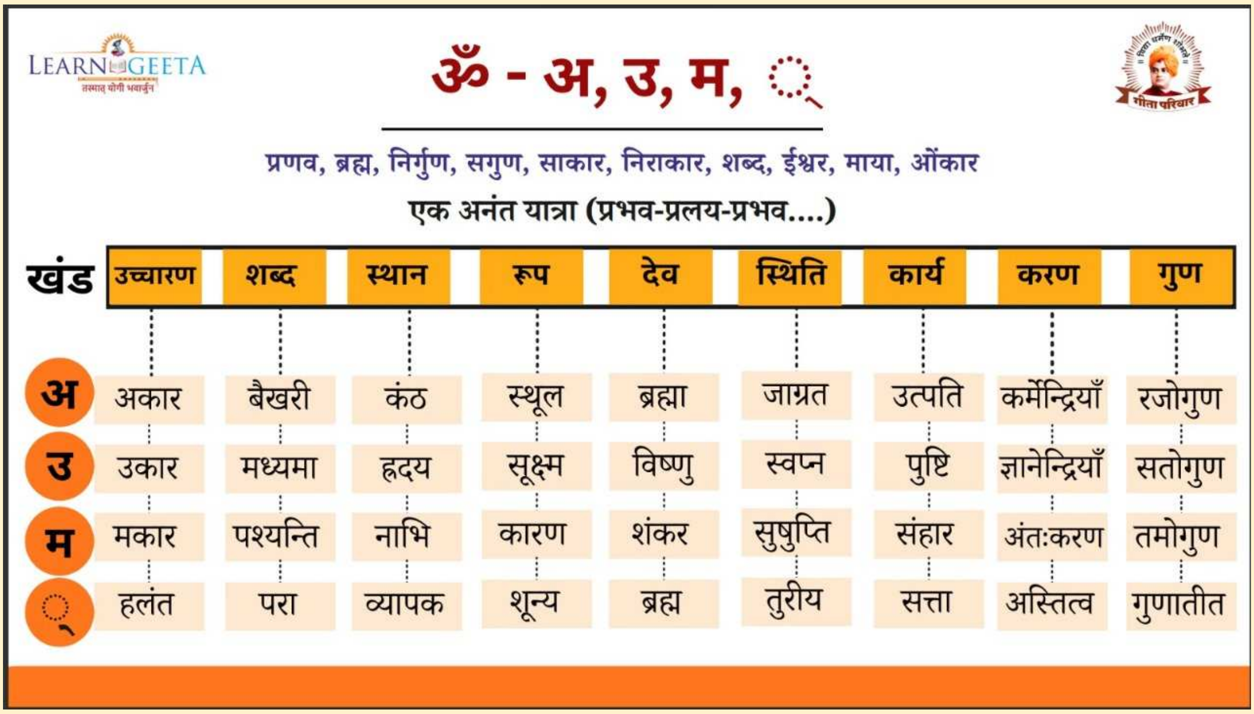

ॐ - अ, उ, म,

प्रणव, ब्रह्म, निर्गुण, सगुण, साकार, निराकार, शब्द, ईश्वर, माया, ओंकार

एक अनंत यात्रा (प्रभव-प्रलय-प्रभव....)

खंड	उच्चारण	शब्द	स्थान	रूप	देव	स्थिति	कार्य	करण	गुण
अ	अकार	बैखरी	कंठ	स्थूल	ब्रह्मा	जाग्रत	उत्पति	कर्मेन्द्रियाँ	रजोगुण
उ	उकार	मध्यमा	हृदय	सूक्ष्म	विष्णु	स्वप्न	पुष्टि	ज्ञानेन्द्रियाँ	सतोगुण
म	मकार	पश्यन्ति	नाभि	कारण	शंकर	सुषुप्ति	संहार	अंत:करण	तमोगुण
	हलंत	परा	व्यापक	शून्य	ब्रह्म	तुरीय	सत्ता	अस्तित्व	गुणातीत

ब्रह्म, निराकार, ईश्वर, माया, ओमकार; यह सारे ओम् के पर्यायवाची हैं, किन्तु इनमें ॐ प्रणव नाद है। मन्दिर में घण्टी बजाते हैं तो उसकी गूँज कई सैकण्ड तक रहती है। हमारी क्षमता बीस से अस्सी डेसिबल (Decible) की है किन्तु हाथी यह गूँज बीस मिनट बाद भी सुन सकता है। यह एक ध्वनि है। ओमकार केवल एक ध्वनि है, कोई शब्द नहीं है।

यदि हम किसी सङ्गीतज्ञ से बात करेंगे तो पता चलेगा कि तीन स्वर होते हैं - मन्द, तार और तीव्र। ये आरोह एवं अवरोह के अनुसार बनते हैं। इनके बीच की ध्वनि को शब्द कहा जाता है। जब तक घर्षण होता है, तब तक टकराने से ध्वनि बाहर निकलती है।

सृष्टि में सबसे पहले शब्द की उत्पत्ति हुई। जब शब्द का स्वरूप बड़ा हुआ तो वायु की उत्पत्ति हुई। बिना वायु के कोई शब्द हो ही नहीं सकता। शब्द और वायु का मन्थन हुआ तो वह घुलने लगा और आकाश शब्द बना। वायु के मन्थन से अग्नि की उत्पत्ति हुई एवं एक-एक करके सभी तत्त्वों की उत्पत्ति हुई। ओमकार तीन शब्दों से मिलकर बना है- अकार, ऊकार, मकार और हलन्त, इन्हीं के अनुसार सृष्टि का चक्र चलता है।

अकार- इसमें जो कुछ बोला जाता है एवं सुना जाता है वह स्थूल है। उसे अनुभव किया जा सकता है एवं वह कण्ठ से निकलता है।

दूसरा माध्यम **उकार-** जो कि हृदय से उत्पन्न होता है। प्रेमी प्रेमिका का प्रेम या माँ का पुत्र के प्रति वात्सल्य देखकर ही समझ में आ जाता है। यह और सूक्ष्म रूप हो गया। इसमें वाणी, शब्दों की आवश्यकता नहीं है। कामना, लोभ, प्रेम आदि देखने से ही पता चल जाते हैं। इनका स्थान है हृदय।

तीसरा है **मकार-** इसका स्थान है नाभि। सङ्कल्प मात्र से ही कार्य हो जाते हैं।

अन्तिम है **परा-** इसका वर्णन नहीं किया जा सकता, यह अनुभव है। इसका रूप शून्य होता है।

ज्ञानेश्वर महाराज जी की घटना है कि, चाङ्गदेव जी शेर पर बैठकर उनके पास आ गए। चौदह सौ वर्ष तक उन्होंने तपस्या की थी। जब ज्ञानेश्वर महाराज जी दीवार को बोले -थोड़ा आगे चलो और दीवार अपने आप चल पड़ी तब चाङ्गदेव जी का अहङ्कार

टूट गया। चौदह वर्ष के बालक के कहने पर दीवार चल पड़ी तो मैंने क्या तप किया।

संसार जड़ तक पहुँच गया। वहाँ परा है, फिर कुछ नहीं रह जाता।

अकार के देवता ब्रह्मा है, अवस्था जागृत है और कर्मेन्द्रियों के द्वारा इसके कार्य होते हैं।

उकार के देवता विष्णु जी हैं, स्वप्न अवस्था में इसकी पुष्टि होती है। यदि हम सोते भी है तो ज्ञानेन्द्रियाँ चलती रहती हैं। इसका गुण सतोगुण है।

मकार के देवता शङ्कर जी हैं, अवस्था सुषुप्ति। अन्तःकरण में विराजित होती है एवं तमोगुण इसकी स्थिति है।

परा और हलन्त-चर और अचर इसमें अनुभव किये जा सकते हैं। यह गुणातीत है। सत्ता और अस्तित्व के भाव से अधिक योगी उस परम आनन्द तक पहुँच जाते हैं।

ओङ्कार का किसी धर्म से कोई लेना-देना नहीं है। ओम को किसी आघात की आवश्यकता नहीं होती। जब ब्रह्माण्ड या अन्तरिक्ष में कोई भी नहीं था तब ओम् व्याप्त था। सूरज के आसपास भी ओम् ही है।

किसी भी कार्य के अन्त में ओम्- तत्- सत्- इति कहा जाता है।

तत् यानि सम्पूर्ण ब्रह्म।

सत् साकार एवं निराकार रूप है। विष्णु जी के रूप में, दुर्गा जी के रूप में, शिव जी के रूप में जिस रूप में जपेंगे, वहाँ सब एक ही हैं।

अतः किसी भी शास्त्र को पढ़ने के बाद या गीता जी को पढ़ने के बाद ओम्- तत्- सत्- इति कहा जाता है। हमारी सारी कमियाँ ईश्वर के चरणों में अर्पित हो गईं एवं उस पर ब्रह्म को समर्पित हो गई, अतः ओम्- तत्- सत्- इति बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

17.24

तस्मादोमित्युदाहृत्य, यज्ञदानतपः(ख्) क्रियाः|
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः(स्), सततं(म्) ब्रह्मवादिनाम्||17.24||

इसलिये वैदिक सिद्धान्तों को मानने वाले पुरुषों की शास्त्रविधि से नियत यज्ञ, दान और तप रूप क्रियाएँ सदा 'ॐ' इस परमात्मा के नाम का उच्चारण करके (ही) आरम्भ होती हैं।

विवेचन: शास्त्रों में ओम् से ही वेद मन्त्रों की शुरुआत होती है एवं शास्त्र विधि से नित्य यज्ञ, दान और तप की क्रियाएँ ओम् का उच्चारण करने से ही प्रारम्भ होती हैं।

17.25

तदित्यनभिसन्धाय, फलं(म्) यज्ञतपः(ख्) क्रियाः|
दानक्रियाश्च विविधाः(ख्), क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः||17.25||

तत्' नाम से कहे जाने वाले परमात्मा के लिये ही सब कुछ है - ऐसा मान कर मुक्ति चाहने वाले मनुष्यों द्वारा फल की इच्छा से रहित होकर अनेक प्रकार की यज्ञ और तप रूप क्रियाएँ तथा दान रूप क्रियाएँ की जाती हैं।

विवेचन: परमात्मा के लिए ही सब काम हैं एवं परमात्मा को प्रसन्न करने के लिए ही मेरे द्वारा यह कार्य किये जा रहे हैं। परमात्मा ही मुझसे यह सारे कार्य करवा रहे हैं, मैं तो एक मात्र निमित्त हूँ।

यह भाव रखना, "**मेरा आपकी कृपा से सब काम हो रहा है, करते हो तुम कन्हैया मेरा नाम हो रहा है।** अतः इस प्रकार से यज्ञ और तप करने वाले उत्तम श्रेणी में आते हैं।

17.26

सद्भावे साधुभावे च, सदित्येतत्प्रयुज्यते|
प्रशस्ते कर्मणि तथा, सच्छब्दः(फ्) पार्थ युज्यते||17.26||

हे पार्थ ! सत्- ऐसा यह परमात्मा का नाम सत्ता मात्र में और श्रेष्ठ भाव में प्रयोग किया जाता है तथा प्रशंसनीय कर्म के साथ 'सत्' शब्द जोड़ा जाता है।

विवेचन: सत् परमात्मा का नाम है एवं श्रेष्ठ कार्य करने के लिए सत् तत्त्व को ही जोड़ा जाता है, जैसे सद्भावना, सदाचार, सत्सङ्ग इत्यादि। ओम संज्ञा, तत् सर्वनाम एवं सत् विशेषण के रूप में प्रयोग किया गया है। सत् ढूँढने से सब कुछ पवित्र एवं सतगुरु हो जाता है। सत्सङ्ग एवं पवित्र कार्य करने के लिए भी सत् को ही खोजा जाता है।

17.27

यज्ञे तपसि दाने च, स्थितिः(स्) सदिति चोच्यते|
कर्म चैव तदर्थीयं(म्), सदित्येवाभिधीयते||17.27||

यज्ञ तथा तप और दान रूप क्रिया में (जो) स्थिति (निष्ठा) है, (वह) भी 'सत्' - ऐसे कही जाती है और उस परमात्मा के निमित्त किया जाने वाला कर्म भी 'सत्' - ऐसा ही कहा जाता है।

विवेचन: जप, तप और दान क्रिया के रूप में परमात्मा के निमित्त किया जाने वाला कर्म है और जब यह कर्म परमात्मा को निमित्त मानकर किया जाता है, वह सत्कर्म कहलाता है।

17.28

अश्रद्धया हुतं(न्) दत्तं(न्), तपस्तप्तं(ङ्) कृतं(ञ्) च यत्|
असदित्युच्यते पार्थ, न च तत्प्रेत्य नो इह||17.28||

हे पार्थ ! अश्रद्धा से किया हुआ हवन, दिया हुआ दान (और) तपा हुआ तप तथा (और भी) जो कुछ किया जाय, (वह सब) 'असत्' - ऐसा कहा जाता है। उसका (फल) न तो यहाँ होता है और न मरने के बाद ही होता है अर्थात् उसका कहीं भी सत् फल नहीं होता।

विवेचन: हे अर्जुन! सभी कर्मों में श्रद्धा ही महत्त्वपूर्ण है। अश्रद्धा से किया हुआ हवन, दान, तप कुछ भी किया जाए उसका कोई फल न अभी होता है और न ही मरने के बाद, अर्थात उसका कभी भी फल नहीं मिलता। अतः जो भी कार्य किया जाए वह पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वास के साथ किया जाए, तभी भगवत् प्राप्ति हो सकती है एवं मन में प्रसन्नता एवं शान्ति हो सकती है।

इस प्रकार इस महत्त्वपूर्ण अध्याय का विवेचन सम्पन्न हुआ।

विचार मन्थन(प्रश्नोत्तर):-

प्रश्नकर्ता: सुमित जी

प्रश्न: इस श्लोक में
**"अनन्याश्चिन्तयन्तो मां(यँ), ये जनाः(फ्) पर्युपासते।
तेषां(न्) नित्याभियुक्तानां(यँ), योगक्षेमं(वँ) वहाम्यहम्॥९.२२॥"**
योगक्षेम का अर्थ स्पष्ट कीजिए?
उत्तर: अप्राप्य की प्राप्ति को योग कहा जाता है और प्राप्त की रक्षा करने को क्षेम कहा जाता है। आपकी आवश्यकताओं का दायित्व भगवान ने ले रखा है लेकिन आपकी इच्छाओं का नहीं। जो व्यक्ति अनन्य भाव से अपना मन भगवान के चिन्तन में लगाते हैं तो उनके योग क्षेम का वहन भगवान स्वयं करते हैं। इसके लिए धन्ना जाट की कथा और किस तरह भगवान प्रकट रूप में गजेन्द्र को मोक्ष देने के लिए गरुड़ पर बैठकर आए, ऐसे उदाहरणें देखे जा सकते हैं

प्रश्नकर्ता: नेहा जैन जी
प्रश्न: आपने कहा कि ओम् का उच्चारण अकेले नहीं करना चाहिए लेकिन मैं तो मेडिटेशन के समय ओम को ही एक बिन्दु पर टिकाकर ऐसा करती हूँ। क्या यह ग़लत है?
उत्तर: मैंने ओम् का जप अकेले नहीं करना, ऐसा कहा था लेकिन ध्यान के समय आप जैसा कर रही हैं, वह बिल्कुल सही है।

प्रश्नकर्ता: सुजाता जी
प्रश्न: अभी जैसे आपने ओम् के उच्चारण के लिए कण्ठ, हृदय और नाभि का क्रम बताया लेकिन मैं तो म् का उच्चारण कण्ठ से कर रही थी तो क्या गलत कर रही थी?
उत्तर: म् का उच्चारण कण्ठ से आ ही नहीं सकता, आप खुद करके देखिए यह नाभि से ही आता है।

प्रश्नकर्ता: राकेश चन्द्र शर्मा जी
प्रश्न: योग का वास्तविक अर्थ क्या है? आजकल जो प्रचलन में है वह क्या है?
उत्तर: योग का वास्तविक अर्थ होता है जुड़ना, अर्थात आत्मा का परमात्मा से जुड़ना योग है। जो आजकल प्रचलन में है, वह योगासन है। जैसे महर्षि पतञ्जलि ने अष्टाङ्ग योग के बारे में बताया है। जिसके आठ अङ्ग
हैं -
'यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि हैं। तो आजकल जो प्रचलन में है, वह आसन है। श्रीमद्भगवद्गीता एक सम्पूर्ण योग शास्त्र है।

प्रश्नकर्ता: दिवाकर जी
प्रश्न: दान देते समय फल की इच्छा नहीं रहती पर यह भाव होता है कि कल को अगर ऐसी स्थिति हमारी हो गई तो कैसा लगेगा, इसी भावना वश दान देने का मन करता है तो यह कितना सही है?
उत्तर: ऐसा दान भी राजस हो गया। यह ग़लत है ऐसा मान कर मत चलिए। दीर्घ काल तक हम जैसा आचरण करते हैं और उसके साथ हमारे करोड़ों जन्मों के संस्कार भी मिलकर चलते हैं तो इससे हमारी प्रवृत्ति राजस की हो गई है, इसमें कुछ भी ग़लत नहीं है। हमें बस यह समझना चाहिए कि अभी हम दूसरी सीढ़ी पर हैं और हमारा ध्येय शिखर पर पहुँचना होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता: विद्या जी
प्रश्न: आपने बताया कि श्रद्धा अलग-अलग तरह की होती है, लेकिन तीर्थ स्थान पर अव्यवस्था देखकर श्रद्धा भी डोल जाती है, इससे बचने का क्या उपाय है?
उत्तर: श्रद्धा का सम्बन्ध देवस्थान के महत्त्व से है, न कि व्यवस्था से। अव्यवस्था को देखकर अगर हम उस तीर्थ स्थान के महत्त्व को कम समझें तो ऐसा उचित नहीं। जिस तरह किसी भी बड़े अस्पताल में अव्यवस्था के चलते भी अगर इलाज उत्तम प्रकार का है तो किसी भी कारणवश हम अपने या अपने परिजनों के इलाज के लिए ऐसे अस्पताल का त्याग नहीं करते। ठीक ऐसा ही तीर्थ स्थान के लिए है। अगर आज व्यवस्था अच्छी नहीं है तो कल को हो भी सकती है, लेकिन किसी भी कारणवश उस देवभूमि, देवस्थान के लिए हमारी श्रद्धा डोलनी नहीं चाहिए।

प्रश्नकर्ता: स्वयं प्रभा जी
प्रश्न: 1 .इस युग में भगवान का कौन सा अवतार होगा और कितने समय के बाद होगा?

2.भगवान के दर्शन करने के लिए हम मन्दिर ही क्यों जाते हैं?
उत्तर: कलयुग में भगवान का कल्कि अवतार होगा और अभी इसमें बहुत समय है क्योंकि कलयुग की आयु चार लाख बत्तीस हजार वर्ष बताई गई है। मन्दिर में भगवान की अच्छे से सेवा होने के कारण देव प्रतिमा जागृत हो जाती है और किसी महापुरुष के द्वारा उस देव प्रतिमा की स्थापना होने के कारण एवं मन्दिर में सात्त्विक प्रवृत्ति के लोगों के अधिक विचरण के कारण इस समष्टि ऊर्जा का लाभ हमें मन्दिर जाने से मिल जाता है।

प्रश्नकर्ता: अजीत टण्डन जी
प्रश्न: परमात्मा, ईश्वर, भगवान और देवता में क्या अन्तर है?
उत्तर: परमात्मा, ईश्वर एवं भगवान एक ही बात है जिनका कभी जन्म या मृत्यु नहीं होती, लेकिन देवता एक योनि है। यह जन्म - मरण की योनि है और देवताओं का भी एक काल है। ब्रह्मा जी भी अपनी सौ वर्ष की आयु पूरी करके शान्त हो जाते हैं। देवता योनि का अपना पुण्य काल है और पुण्य काल क्षीण होने पर देवता भी अपना शरीर छोड़कर मनुष्य योनि में आते हैं।

प्रश्नकर्ता: विभा जी
प्रश्न: अन्तिम समय में हमें व्यक्ति को गीता जी का कौन सा अध्याय सुनाना चाहिए?
उत्तर: कोई भी अध्याय जो आपको कण्ठस्थ हो, अर्थ सहित गीता जी या गीता जी के श्लोकों को सुना सकते हैं। अन्त समय में गीता जी को सुनाना परम सेवा का कार्य माना गया है।

प्रश्नकर्ता: कलोल घोष जी
प्रश्न: गुरु का चयन कैसे करें?
उत्तर: इसके लिए आप चार बातों का ध्यान रखिए:-
1.गुरु स्वयं या उनकी पीढ़ियों में से कोई स्वयम्भू गुरु तो नहीं?
2.क्या गुरु किसी परम्परा सम्प्रदाय से जुड़े हुए हैं?
3.क्या उन्हें शास्त्रों का ज्ञान है और उनकी शास्त्रों के पठन-पाठन में रुचि है?
4.गुरु अपनी पूजा करवाते हैं या भगवान की पूजा करवाते हैं?
इन चार बातों को ध्यान में रखकर आप अवश्य ही अपने लिए गुरु का चयन कर सकते हैं।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(म्) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रद्धात्रयविभागयोगो नाम सप्तदशोऽध्याय:।।

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'श्रद्धात्रयविभागयोग' नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा

संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!

आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीएॅफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||